P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-7* ISSUE-11* July- 2020
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

मध्यकालीन हिन्दी निर्गुण संत साहित्य में निरूक्ति नैतिक भावना

Immorality in The Medieval Hindi Nirgun Saint Literature

Paper Submission: 12/07/2020, Date of Acceptance: 24/07/2020, Date of Publication: 26/07/2020

सुनील कुमार गौतम
सहायक आचार्य,
इतिहास विभाग,
चन्द्रगुप्त मौर्य प्रभा वंश महिला महाविद्यालय, मथौली, बनकटी, बस्ती, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश

संतो न मानव समरसता उत्पन्न करने के लिए भक्ति का खूब प्रचार–प्रसार किया। उनका स्पष्ट मत है कि मानव चित्र को एक पल के लिए भी स्वर से विलग नहीं होना चाहिए, यही भक्ति है प्रेम भक्ति से ही उत्पन्न होता है। संतों की दृष्टि से प्रेम, धर्म का मुख्य अंग है। निर्गुण संतों ने प्रेम के मार्ग को अत्यंत कठिन माना है। कुतुब ने कहा है कि प्रेम की सुधि में मस्त साधक को किसी चीज की सुधि नहीं रहती है। निर्गुण संतों ने अपने साहित्य में प्रेम को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। संतों ने भक्तों का साधन भजन, कीर्तन, आदि आचारगत निर्मलता, सत्संगी, विश्वास ज्ञान आदि को माना है। और भक्तों में बाधक तत्व अष्टविकार, ईश्वर, अविश्वास, वाहआडंबर को माना है। संतों ने अपने साहित्य में नैतिक भावनाओं को प्रमुखता से निरूपित किया है जिससे परोपकार, सत्संगी, कुसंगति, दान, दया, अहिंसा, सत्य, सदाचार, अस्तेय आदि का प्रमुखता से उल्लेख है। निर्गुण संतों ने इच्छाओं को दुख का कारण बताया है। इसलिए मन पर नियंत्रण रखना आवश्यक है, निर्गुण संतो द्वारा निंदा त्याग अभिमान हिंसा आदि पर ही बल दिया गया है।

The saints spread a lot of devotion to create human harmony. He is clear that the human picture should not be separated from the voice even for a moment, that is devotion, love arises from devotion. From the point of view of saints, love is the main part of religion. Nirguna saints have considered the path of love as extremely difficult. Qutb has said that in love of love, a great seeker does not remember anything. Nirguna saints have given love an important place in their literature. Saints have considered Bhajans, Kirtans, etc., the moral purity, satsangi, faith knowledge etc. of the devotees. And among the devotees, the obstructing element is believed to be Ashtavikar, God, Unbelief, Vahdambara. The saints have prominently depicted moral sentiments in their literature, which prominently mention philanthropy, satsangi, kusangati, charity, mercy, non-violence, truth, virtue, asthey etc. Nirguna saints have described wishes as the cause of sorrow. Therefore, it is necessary to control the mind, the emphasis has been on condemnation, pride, violence etc. by the nirguna saints.

मुख्य शब्द :परिष्कार, अहिंसा वृत्ति, आन्तरिक पवित्रता अनाशक्ति, अपरिग्रही विषयवासना, निन्दक, आश्वान्त, चिन्ताहीन इत्यादि
Sophistication, Ahimsa Instinct, Inner Purity, Anashakti, Indescribable Dilemma, Blasphemy, Assurance, Worryless etc.

प्रस्तावना

काव्य और जीवन का बड़ा समीपी सम्बन्ध है और जीवन में नैतिक चेतना का बड़ा महत्व है। क्योंकि आदर्श जीवन के लिये परिष्कार की अति आवश्यकता होती है और यह परिष्कार नैतिकता से ही साधित होता है। संतों की कविता मानव जीवन की आनन्दमयी आचार संहिता है।

परोपकार

संतों ने स्वार्थ को हेय और त्याज्य बताते हुये परामार्थ, परोपकार की व्यापक प्रतिष्ठा की है। नानक देव मानते है कि जो व्यक्ति विद्या को विचार सहित ग्रहण करता है। वही परोपकारी है।[1] जो व्यक्ति अपने स्वार्थ का विसर्जन करके दूसरों के लिये विनत होता है। वही गौरवान्वित होता है।[2]

रज्जब दास का दृष्टिकोण है कि सारा संसार स्वार्थ के वशीभूत होकर ही अपने को ठगाता है।[3] उनकी भावना है कि स्वार्थ विषतुल्य है, जबकि परमार्थ मिश्री के समान है।[4] मलूकदास ने परोपकार की भावना से अभिभूत होकर लोगों को यह उपदेश दिया है कि संसार के संतत्व प्राणियों के दुःखों को दूर करके उन्हें सुत्व प्रदान करना चाहिये।[5] परोपकार की भावना से प्रेरित होकर ही मनोहर प्रेमा का राक्षस उद्धार करने के लिये अपने प्राण की बाजी लगा देता है।[6]

मृगावती का राजकुंवर इसी भावना से प्रेरित होकर रूक्मिणी की रक्षा करता है।[7] जायसी के पद्मावत् में भी इसी भावना पर बल दिया गया है। समुंद्र में तूफान आने पर पद्मावती बहते–बहते वहां जा लगी। जहां समुंद्र की कन्या लक्ष्मी अपनी सहेलियों के साथ खेल रही थी। लक्ष्मी परोपकार मानवता की भावना से प्रेरित होकर पद्मावती को घर ले गयी।[8] जायसी की भांति कबीरदास जी ने भी परोपकार को महत्व दिया है उपकार को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्रदान करते हुये कबीरदास जी ने कहा–

दाता तरवर दया, फल उपकारी जीवंत।
पंछी चलै दिसावरां, विरधा सुफल फलंत।।[9]

इस प्रकार परोपकार पर बल देकर संतों ने एक दूसरे के प्रति उपकार की भावना को बढ़ावा दिया है।

सत्यसंगति

मनुष्य के लिये सत्यसंगति आवश्यक होती है। जिस प्रकार चंदन वन में उगने वाले अन्य वृक्ष भी उसके सुगंध से सुवासित होते हैं, उसी प्रकार मनुष्य भी अपने वातावरण से प्रभावित होता है।[10] कबीरदास जी भी सत्यसंगति पर बल देते हुए कहते हैं कि साधुओं की संगति कभी निष्फल नहीं जाती है। और उनकी संगति में बैठने पर फिर किसी प्रकार के दोष लगने का डर नही रहता क्योंकि चंदन के वृक्ष को कोई नीम के समान कडुवा नहीं बता सकता है।[11] साधुजनों की संगति से दुर्बुद्धि का नाश एवं सद्बुद्धि की प्राप्ति होती है।[12] जायसी का कहना है कि नीचों का साथ कभी नहीं करना चाहिये।[13] कुमार्ग पर चलने वाला व्यक्ति मुंह दिखाने के योग्य नहीं होता है।[14] दादू ने साधु संग को भवसागर को पार करने के लिये नाव के सदृश्य बताया है।[15] सुन्दरदास संसार में सत्संग को सर्वश्रेष्ठ मानते है।[16] उनकी धारणा है कि जो भी संत की संगति में जाता है। वह अनायास संसार सागर को पार कर जाता है। तथा उसे मोक्ष भी मिल जाता है।[17]

दान

संत साहित्य में दान को विशेष महत्व प्रदान किया गया है। नानक का कहना है कि वहीं व्यक्ति सच्चा ईश्वरीय मार्ग जानता है, जो परिश्रम करके धन अर्जित करता है और उसमें से कुछ दान करता है।[18] वे उसी दान को श्रेयस्कर मानते है जो ईश्वर की कृपा से प्राप्त होता है।[19] दान से पुण्य और कल्याण दोनों होते है। दान से मोक्ष होता है और दोष नहीं रहते दान में सब धर्मो का मेल होता है। दान से लाभ ही होता है और मूलधन बच जाता है। दान ही खेकर किनारे ले जाता है। दान से कर्ण दोनों लोकों को तर गया।[20] दुनिया से जाते समय व्यक्ति अपने साथ कुछ नहीं ले जाता है। केवल दान में दिया ही उसके साथ जाता है।[21] कासिम शाह भी हंस, जवाहर में दान के महत्व की चर्चा करते हैं।

इस संसार में बिना दान दिये किसी को मोक्ष प्राप्त नहीं होती। इस भवसागर को पार करने के लिये दान ही सबसे महत्वपूर्ण नाव है। दान देने से मनुष्य इस लोक और परलोक दोनों ही में सुख प्राप्त करता है।[22]

नूरमुहम्मद कहते है कि कीर्ति के हेतु भी दान देना आवश्यक है।[23] उसमान कहते है कि भवसागर में डूबते को केवल दान का ही सहारा है। दान ही मझदार में खेवक का कार्य करता है।[24]

दया

संतों ने सागर में दया को ही सार बताया है।[25] मलूकदास जी का मानना है कि दया की भावना के ही कारण वाणी में अमृत समान मधुरता आती है।[26] वे दया से द्रवित होकर यहां तक कहते है कि हरि डाल को नहीं तोड़ना चाहिये, उसमें भी अपने जैसा प्राणतत्व अनुभव करना चाहिये।[27] वे दया के बिना मक्का, मदीना, द्वारका, बद्रीनाथ, केदारनाथ आदि तीर्थो की महत्ता को व्यर्थ मानते है।[28] संत रैदास की धारणा है कि जिसका मन दयाहीन है, वह पापयुक्त पातकी तथा महानीच है।[29] गुरू नानक ने भी दयावान होने का उपदेश दिया है। उन्होंने मुसलमानों को दया की मस्जिद बनाने की सलाह दी है।[30] संत दादू दयाहीन देश में प्रवेश को भी अनुचित मानते है।[31] उनकी धारणा है कि जो व्यक्ति दयारहित होता है वह काग, कुत्ते तथा भृगाल की भॉति छोटे दिलवाला होता है।[32] संत रज्जब की धारणा है कि जहां दया होती है, वहीं धर्म की प्रतिष्ठा होती है।[33]

नूर मुहम्मद का कहना है कि यह भवसागर अपार है। मेरी करनी भी अच्छी नहीं है। मुझे तो केवल तुम्हारी दया का भरोसा है। तुम्हारी दया से ही मेरी मुक्ति सम्भव है।[34]

अहिंसा

संत अहिंसक थे इसलिये उन्होंने हिंसा का प्रबल विरोध किया है। संतों की अहिंसा दयामूलक थी। मलूकदास मानते है कि सभी जीवो में एक ही ब्रह्म का निवास है। अस्तु जीव हत्या ब्रह्म की हत्या है, लेकिन जीव हत्या करने वाला मूर्ख नर इस सत्यता को नहीं जानता है।[35] कबीरदास जी भी जीव हिंसा की भर्त्सना की है उनका कहना है कि मानव और जीव के रक्त और मांस में कोई भेद नहीं है।[36] जिसकी हत्या तू आज कर रहा है, वही कल तुम्हारी हत्या करेगा।[37] इसलिये कबीर ने लोगों को सम्बोधित करते हुए कहा है कि सारे जीव प्रभु के प्यारे है और जो व्यक्ति इन जीवों का वध करके भवसागर को पार होना चाहता है, वह पार नहीं हो सकता है।[38]

संत दादू दयाल का मानना है कि जो व्यक्ति जीव हत्या करता है, वह नरक में पड़ता है।[39] इतना ही नहीं आहत जीव–हत्यारें को भी आहत करता है।[40] इसलिये दादू यह उपदेश देते हैं कि व्यक्ति को जीव वध

के स्थान पर जीव का उद्धार करना चाहिये, और यदि वध की कोई भी विवशता है तो क्रोध, मान और अहंकार आदि का वध श्रेयस्कर है।[41] रज्जब दास ने जीव बध को सबसे बड़ा पाप और जीव रक्षा को सबसे बड़ा पुण्य माना है।[42]

गुरूनानक ने कलयुग के राजाओं को कसाई तथा हिंसक मानते हुए कलयुग को छुरी की तरह बताया है।[43] रैदास भी जीव हत्या को पाप समझते हैं उनका विश्वास है कि जो जीव बध करता है, उसे प्रभु के द्वार पर कठोर सजा मिलती है।[44] सुन्दरदास जी का कहना है कि जो मुर्गी को मारता है, बकरी को काटता है, गरीबों को परेशान करता है, गायों के साथ निर्दयता करता है, जुल्म करता है, प्रभु से नहीं डरता है, उसे भयंकर नरक में जाना पड़ता है।[45] जायसी कहते है कि उन्हें निष्ठुर कहना चाहिये, जो दूसरे जीवों का मांस खाते है।[46] उसमान ने चित्रावली के आखेट प्रसंग में अहिंसा वृत्ति का बड़ा ही सजीव वर्णन प्रस्तुत किया है और हिंसा की निन्दा की है।[47] इस प्रकार अहिंसा पर बल देकर संत कवियों ने संसार के सभी प्राणियों को जहां एक समान माना है। वहीं मानव को हिंसा न करने की शिक्षा दी है। भारतीय संस्कृति के अनुरूप इन्होंने 'अहिंसा परमोधर्मः' की परिकल्पना को साकार किया है।

सत्य

संतों ने सत्य से बड़ा कोई धर्म और पुण्य नहीं माना है। गुरू नानक का विश्वास है कि परमात्मा के सम्मुख सम्मान प्राप्त करने के लिये सत्य और श्रम का आश्रय लेना चाहिये।[48] सत्य की कमाई ही श्रेयस्कर होती है झूठी बातें करने से झूठ पल्ले पड़ता है।[49] संत कबीर तो सत्य के बराबर कोई तप ही नहीं मानते हैं।[50] दादू दयाल की आस्था है कि सत्य ईश्वर का पर्याय है।[51] उस ईश्वर को पाखण्ड से नहीं, वरन् सत्याचरण से प्राप्त किया जा सकता है।[52] रैदास ने भी सत्य को ईश्वर रूप बताया है।[53] उन्होंने यह उपदेश दिया है कि जीवन पर्यन्त सत्य का त्याग नहीं करना चाहिये।[54]

धनी धरमदास मानते है कि व्यक्ति बिना सत्य को जाने जन्म–जन्मान्तर दुःख से दग्ध होता रहता है।[55] उसमान ने सत्य को सबसे बड़ा माना है उनका कहना है कि सत्य के समान कोई पूत नहीं है।[56] जायसी का कहना है कि असत्य भाषण करने वाला व्यक्ति सेमर के फल की भॉति ही खोखला होता है। सत्य कहने से तो मुख की कांति भी द्विगुणित हो जाती है। सत्य बोलने वाले का धर्म भी साथ देता है। जहॉ सत्य बोला जाता है वहीं साहस और वही सिद्धि भी है इसलिये सत्य बोलने वाला व्यक्ति ही सत्यवादी कहलाता है।[57]

सदाचार

संत साहित्य में सदाचार को विशेष महत्व प्रदान किया है। संतों ने सम्पूर्ण समाज को यह उपदेशित किया है कि वाह्याडंम्बरों के प्रति किसी भी प्रकार का लोभ–मोह और आसक्ति न रखकर आन्तरिक पवित्रता पर सदैव ध्यान देना चाहिये। संत मलूकदास ने वाह्याडंबरों को पीड़ादायक बताते हुये आत्म साधना और सात्विकता के ग्रहण पर लोगों की दृष्टि आकृष्ट की है।[58] कबीर दास के सदाचार को विशेष महत्व प्रदान किया गया है। उनका विश्वास है कि आन्तरिक पवित्रता ही सब कुछ है। उनका कहना है कि मन्दिर की वन्दना और मस्जिदों में पॉच बार नमाज पढ़ना मिथ्या है। इन कर्मो में आत्म सत्यता नष्ट हो जाती है।[59] जप, तप, तीर्थ, व्रत आदि सभी थोथे है। इन पर विश्वास करना व्यर्थ है।[60] ब्रह्माण्ड तो पिण्ड में ही है। बाहर भटकने के स्थान पर इसी शरीर में ही परम ज्योति को पहचानना चाहिये।[61]

कबीर ने सदाचार के अन्तर्गत शील को बहुत महान माना है। उनका कहना है कि इस संसार में ज्ञानी, ध्यानी, संयमी, दाता, वीर, जपी, तपी तो बहुत है, लेकिन शीलवान कोई एक है।[62] क्योंकि शील ही तो सुख का सागर है और संसार में इसी का अभाव है।[63]

गुरू नानक ने भी सर्वत्र आन्तरिक पवित्रता पर बल दिया है। उनकी धारणा है कि, वही जीवात्मा रूपी रूपसी, परमात्मा रूपी प्रिय को प्यारी होती है जो आन्तरिक भक्ति करती है।[64] उन्हें यह देखकर बड़ी पीड़ा होती है कि व्यक्ति अन्तस् से तो कलुषित है, लेकिन उपर से शुभ और बुरे आचरण में लीन है।[65] इसलिये वे शील और संतोष को विशेष महत्व प्रदान करते है।[66] संत रैदास भी नाचने, गाने, जप, तप, दान, सेवा, पूजा, षटकर्म, इन्द्रिय निग्रह आदि को भ्रम मानते हुए,[67] उन्हें हरि प्राप्ति में बाधक मानते है।[68] संत दादू वाह्याडम्बर का विरोध करते हुये अपने आप को संवारने का उपदेश दिया है।[69] उन्होंने कथनी और करनी पर बल देकर सात्विक जीवन का संदेश प्रदान किया है।[70] संत सुन्दरदास का कहना है कि आत्मा को ही अपना देवता और शरीर को देवालय मानकर उसे हृदय के सिंहासन पर बैठाओं।[71]

कर्मकाण्ड मक्के जाना, हज्ज करना या नमाज पढ़ने में उठना–बैठना सब बेकार है यदि हृदय और शरीर का साम्य नहीं, यदि शुद्ध हृदय से निरंतर परम् सत्ता का ध्यान नहीं किया जाता है तो, परमेश्वर की कृपा प्राप्त नहीं हो सकती। निरे कर्मकाण्ड में रत व्यक्ति खरीददार की भॉति है। जो किसी मूल्य पर कर्ता को क्रय नहीं कर सकते अर्थात् उसे प्राप्त नहीं कर सकते।[72] सूफी संतों ने सदैव हृदय की पवित्रता पर विशेष बल प्रदान किया है। जायसी कहते है कि जहां पर धर्म होता है, वहां पाप मिलकर नहीं रह सकता है, वह अलग दिखलाई देता है। जैसे कि सोने में सुहागा मिला देने से शीशा अलग दिखलाई दे जाता है।[73]

अपरिग्रह

किसी व्यक्ति या वस्तु के प्रति महत्वहीनता ही अपरिग्रह है। संतों ने सम्पूर्ण संसार को अनित्य और क्षण भंगुर माना है। संतों ने धन और ऐश्वर्य को मिथ्या माना है। उन्होंने अपने प्रभु से उतना ही धन की कामना की है। जितने से कुटुम्ब का पालन हो जाय और द्वार पर आया दुआ साधु भी सम्मानित हो जायें। धन संग्रह के कारण व्यक्ति भोग–विलास में लिप्त हो जाता है। मनुष्य जिन्दगी भर धन एकत्र करता है। आखिर अंत में खुले हाथ दुनिया में चला जाता है। कबीर अपने आप प्रश्न करते हैं कि–मैं ऊँचा घर क्यों बनाऊ? मेरा घर (शरीर) तो साढ़े तीन हाथ लम्बा है। हे मनुष्य सम्पत्ति का गर्व न करो अन्त में तुम्हें (अपनी कब्र के लिये) उतनी ही भूमि की आवश्यकता पड़ेगी जिसका विस्तार तुम्हारा शरीर ढकने के काम के लिए पर्याप्त होगा।[74] इसी बात को

मद्देनजर रखकर कबीर अधिक धन एकत्र करने की अपेक्षा अधिक पुण्य एकत्र करने पर बल देते है। ताकि वह भविष्य में काम आये।[75]

इस प्रकार कबीर समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता को दूर करना चाहते थे। धनी व्यक्तियों की कटु आलोचना करते हुये कबीर ने कहा है कि धनियों से तो निर्धन ही अधिक अच्छे है। जो सदव्यवहार करते है, सच्चरित्र है। धनिक तो भूखे–प्यासे के साथ भी पैसे का लोभ प्राप्त करने की सोचता है। अतः वह स्वार्थ के लिये अपने पराये किसी का भेद नहीं रखता है।[76] पूँजी की आवश्यकता पर बल देते हुए जायसी ने कहा है कि पूँजी के बिना मनुष्य वस्तुतः निर्जीव हो जाता है।[77] किन्तु साथ ही पराये धन के प्रति अनाशक्ति बरतने को भी कवि ने कहा है। कवि के अनुसार द्रव्य वही है, जो अपनी गॉठ में होता है और पराये धन पर निर्भर नहीं रहना चाहिये, क्योंकि द्रव्य की प्रकृति सदैव अविश्वसनीय होती है।[78] धन घमण्ड का कारण बन जाता है।[79]गुरू नानक का मानना है कि जो व्यक्ति अपरिग्रही नहीं होता है, वह संसार में लूटा जाता है।[80]

अस्तेय

अस्तेय का अर्थ है लोक भाषा में चोरी न करना है, चोरी एक पाप है इसकी अवधारणा करते हुए नानक ने लिखा है कि चोर चोरी करके तो चला जाता है, लेकिन वह भयाकांत रहता है। चारों ओर देखते हुए चलता है, फिर भी भगवान की दृष्टि से वह बच नहीं पाता है।[81] गुरू नानक की दृष्टि में चौर्य कर्म परम निन्दनीय है। चोरी से जो कुछ प्राप्त होता है, वह मन को भी नहीं अच्छा लगता है।[82] संत दादू का यह विश्वास है कि जो व्यक्ति जाग्रत रहता है, उसके यहां चोरी नहीं होती और जो सो जाता है, उसका सारा माल चोर उठा ले जाता है।[83] संतों ने समाज में नैतिकता के उत्थान के लिये चोरी न करने की प्रेरणा प्रदान की है।

इच्छाये ही दुःख का कारण

विभिन्न इच्छायें ही संसार में दुःख का कारण बनती है। इन्हीं की पूर्ति के लिये मनुष्य के पुण्य क्षीण हो जाते है। जायसी स्वयं एक सदाचारी महात्मा थे। उन्होंने हीरामन तोते के माध्यम से नागमति रूपी दुनिया के धंधे में फंसी जीवात्मा को त्राण देकर आत्मा–परमात्मा का मिलन कराया है। भोग मनुष्य के शरीर का सबसे बड़ा दुर्गुण है, वहीं सब दोषों तथा रोगों की जड़ है।[84] कोई भी प्राणी भोग के दुष्परिणाम से मुक्त नहीं रह सकता। मांग का परिणाम नाश अथवा मृत्यु में निहित है।[85] जो मूर्ख है वह सच्चा मार्ग भूलकर जगत के झूठे स्नेह से मायाजाल में पड़कर भोगों के पाश फंसते है।[86] यही सब सोचकर जायसी को स्पष्ट रूप से कहना पड़ा कि यदि भोग करने से भोग ही मिलता है तो भोग त्यागकर जोग क्यों नहीं ग्रहण करता है।[87] इसी प्रकार कबीर दास जी का कहना है कि हे जीव! तू मन की इच्छानुसार न चल। मन का अनुगामी मत बन, क्योंकि वह तो सर्वदा विषयवासना में संलग्न रहता है। मन की इस माया में लिप्त रहने की आदत छुड़ा दें। जिस प्रकार तकुए पर चढ़े कच्चे सूत को खींचकर उसके केन्द्र स्थल पर लक्ष्य पिंदिया पर ही चढ़ा दिया जाता है। उसी प्रकार प्रभु भक्ति में अपरिपक्व इस मन को ब्रह्म में लगा दो।[88] मन पर नियंत्रण रखने की आवश्यकता पर मंझन ने भी बल दिया है।[89] काम, क्रोध, मद, लोभ पर विजय प्राप्त करने की आवश्यकता पर कवियों ने बल दिया है।[90]

निन्दा–त्याग

निर्गुण संतों ने निन्दा त्याग पर बल दिया है। उनका विश्वास था कि निन्दा में वे ही प्रवृत्ति होती है जो मूर्ख और अज्ञानी है। कबीरदास जी का कहना है कि जो ज्ञानहीन हैं वे ही दूसरों की निन्दा करते फिरते है। जो राम नाम में लीन रहते है, उन्हें अन्य बातें अच्छी लगती ही नही।[91] उनका परामर्श है कि साधु[92]और दरिद्र[93] की निन्दा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि इनका निन्दक संकट में पड़ता है।

निन्दा को त्याज्य बताते हुए कबीर ने निन्दक को सम्मान देने का उपदेश दिया है। उनका मत है कि निन्दक को दूर नहीं करना चाहिये, उसका आदर सत्कार करना चाहिये क्योंकि वह अन्य अतिरिक्त बातें कहकर शारीरिक–मानसिक शुद्धि की प्रेरणा देता है।[94] दादू दयाल का विचार है कि निन्दक तो दूसरे को स्वच्छ बना देता है। लेकिन स्वयं मलिन हो जाता है।[95] लेकिन दादू का यह निर्देश है कि साधु की निन्दा नहीं करनी चाहिये। जिस घर में साधु की निन्दा होती है वह घर समूल नष्ट हो जाता है।[96] नानक ने निन्दा को घृणित बताया है।[97]

इस प्रकार संतों ने निन्दा त्याग पर बल दिया है। निन्दा करने वाले व्यक्ति को स्वयं अपने आप में सुधार करना चाहिये।

अभिमान–हीनता

संत साहित्य में मान, अभिमान, अहंकार का व्यापक निषेध मिलता है। संतों को यह स्पष्ट रूप से ज्ञात था कि अभिमान ही व्यक्ति के पराभव का कारण होता है। कबीर ने जोरदार शब्दों में यह चेतावनी दी है कि किसी भी व्यक्ति को ऊँचे आवास,[98] सुन्दर शरीर[99] आदि को देखकर गर्व नहीं करना चाहिये। क्योंकि अभिमान से व्यक्ति अपने मूल को गंवा देता है।[100] साथ ही साथ व्यक्ति अभिमान में अनेक आपदाओं को भी आमंत्रित कर लेता है।[101] फिर भी मांग छोड़ा नहीं जाता। भले ही वह सबको खा जाता है।[102]

दादू के अनुसार घमंड का त्याग कर देना ही श्रेयस्कर है।[103] मलूकदास ने कहा है कि बालू की भीति के समान शरीर पर गर्व करना मूर्खता है।[104] धनी धरमदास ने भी अभिमान का परिणाम बड़ा भयंकर माना है। उन्होंने महाभारत के युद्ध को अभिमान की ही परिणति स्वीकार किया है।[105] गुरू नानक ने उसी को सचा दिगम्बर[106] और उसी को सच्चा काजी[107] माना है जिसने अहंकार को त्याग दिया है। उन्होंने जीवात्मा की पीड़ा का मूल कारण अभिमान को ही स्वीकार किया है। इसीलिये वे मन के अभिमान को छोड़ देने की सलाह देते हैं।[108] संत रज्जन की दृष्टि में गर्व का कोई मूल्य नही है। क्योंकि वे जानते है कि गर्व से किसी कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती है।[109]

जायसी का कहना है कि मन में अभिमान की मात्रा किसी को शोभा नहीं देती। चन्द्रमा को देख लो वह पूर्णिमा के दिन को अपना पूर्ण वैभव समझकर गर्व करता

है। इसी कारण इसी दिन उसे राहु आकर ग्रस लेता है।[110] अतः व्यक्ति को अभिमान का त्याग कर देना चाहिये।

नीति के अन्य रूप

संत साहित्य में नीति के और भी अनेक पक्ष उद्घाटित हुये है। इन अन्य पक्षों के अन्तर्गत चिन्ता, विरोध, सहनशीलता, संयम, मान आदि उल्लेखनीय है। संतों ने चिन्ता को बड़ा कष्टकर बताया है। इसलिये कबीर दास जी कहते है कि चिन्ता को मन से निकाल दीजिये।[111] संत दादू दयाल का भी विश्वास है कि चिन्ता करने से कुछ प्राप्त नहीं होता है। वह तो प्राणों का भी भक्षण करती है।[112] सुन्दरदास भी चिन्ता को शरीर नाशक मानकर[113] ईश्वर के प्रति आश्वस्त चिन्ताहीन होने की सलाह दी है।[114]

संतों ने लोगों को यह भी उपदेश दिया है कि किसी का भी विरोध नहीं करना चाहिए क्योंकि विरोध से प्रचण्ड पीड़ा प्राप्त होता है। सारा सुख तो आराधना में है।[115] सभी को अपने जैसा ही देखना चाहिए।[146]

अध्ययन का उद्देश्य

निर्गुण संतों का मुख्य उद्देश्य उस समय की तत्कालीन विकट परिस्थितियों को संभालना था। इसलिए उनके द्वारा ऐसे व्यक्तियों को अपने निकट लाने का प्रयास किया गया। जो शोषित और पीड़ित थे। इन भक्त कवियों द्वारा उनके अंदर भक्ति कर्तव्य बोध तथा प्रेम और समरसता का संचार किया गया मध्यकालीन भारतीय समाजिक संस्कृति इतिहास लेखन के लिए निर्गुण हिंदी भक्ति साहित्य का बहुत ही महत्व है। इन कामों में ही भारतीय समाज के बहुसंख्यको के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन की स्पष्ट झलक दृष्टिगोचर होती है। इसके उपयोग किए बिना मध्यकालीन सामाजिक, सांस्कृतिक इतिहास लेखन संभव नहीं होगा। वर्तमान समय में सामाजिक सौहार्द के लिए इन निर्गुण भक्त कवियों के उदाहरण आज भी उतनी ही प्रसांगिक है।

निष्कर्ष

संतों ने विनम्रता को मानव का सामान्य गुण माना है। उन्होंने विनम्रता में अद्भुत मिठास[117] तथा उदारता[118] का भावन किया है। निर्गुण संतों ने सहनशीलता की भी बड़ी प्रशंसा की है। पराई स्त्री के प्रति आकर्षण की भी संत कवियों ने निन्दा की है। कबीरदास जी पराई नारी के प्रति आकर्षण को बुरा कहा है। नैतिकता से च्युत स्त्री सम्मान का पात्र नही होती। पर नारी आकर्षण की निन्दा करने का मन्तव्य कवियों का इस बात से रहा होगा कि बहु विवाह अथवा अपहरण विवाह को वह सामाजिक शिष्टाचार के विरूद्ध मानते थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि आध्यात्मिक भावना संतों की सफल चेतना का केन्द्रीय तत्व है। संतों का मत, संतों का धर्म, संतों का कर्म, आध्यात्म से अनुप्राणित है। उनका प्रेम, उनका परोपकार, दान, दया, आचार, विचार आदि सब कुछ प्रभु प्राप्ति के मार्ग को प्रशस्त करने वाला है। संतों की नैतिक भावना आचारिक एवं मानसिक परिष्कार की शिक्षा देती है। संत एक ऐसे समाज की रचना चाहते थे जो कि सभी प्रकार के विचारों से मुक्त हो, वहां आचरण की निर्मलता, प्रेम की भावना, विद्यमान हो, सभी व्यक्ति एक–दूसरे के साथ हिल मिलकर रह सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *सुन्दर ग्रन्थावली, भाग–एक, पृ0 363*
2. *महीप सिंह, गुरू नानक, पृ0 76*
3. *वही, पृ0 90*
4. *रज्जब दास की सर्वगी, पृ0 561*
5. *रज्जब दास की सर्वगी, पृ0 561*
6. *मलूकदास जी की बानी, पृ0 33*
7. *मधुमालती, पृ0 90*
8. *मृगावती, पृ0 191*
9. *जायसी ग्रन्थावली, पद्मावत, पृ0 154*
10. *कबीर ग्रन्थावली, संजीवनी कौ अंग 7, पृ0 60*
11. *जायसी ग्रन्थावली, पद्मावत स्तुति खण्ड 22/6–7, पृ0 7*
12. *कबीर ग्रन्थावली, साध कौ अंग।, पृ0 38*
13. *वही अंग 2, पृ0 38*
14. *जायसी ग्रन्थावली, पद्मावत, चित्तौर आगमन खण्ड 2, पृ0 167*
15. *चन्दायन, मैना समाधान खण्ड 237, पृ0 230*
16. *दादू दयाल की बानी, भाग–1, 15/5*
17. *सुन्दर विलास, छन्द 265*
18. *वही, छन्द 271*
19. *महीप सिंह, गुरू नानक, पृ0 134*
20. *वही, पृ0 48*
21. *जायसी ग्रन्थावली (सटीक), पद्मावत, देश यात्रा खण्ड 387, पृ0 389*
22. *वही, पृ0 53*
23. *कासिम शाह, हंस जवाहिर, पृ0 198*
24. *नूर मुहम्मद, अनुराग बांसुरी, पृ0 156*
25. *उसमान, चित्रावली, पृ0 88*
26. *मलूकदास जी की बानी, पृ0 33*
27. *वही, पृ0 33*
28. *वही, पृ0 33*
29. *वही, पृ0 33*
30. *मलूकदास जी की बानी, पृ0 34*
31. *महीप सिंह, गुरू नानक, पृ0 64*
32. *दादू दयाल की बानी, भाग–1, 29/39*
33. *संत बानी संग्रह, भाग–1, पृ0 108*
34. *रज्जन दास की सर्वगी, पृ0 430*
35. *नूर मुहम्मद, इन्द्रावती, पृ0 02*
36. *मलूकदास जी की बानी, पृ0 33*
37. *कबीर बीजक, सबद 55*
38. *संतबानी संग्रह, भाग–1, पृ0 61*
39. *रज्जबदास की सर्वगी, पृ0 425*
40. *वही, पृ0 428*
41. *संत बानी संग्रह, भाग–2, पृ0 109*
42. *वही, पृ0 110*
43. *रज्जब दास की सर्वगी, पृ0 430*
44. *महीप सिंह, गुरूनानक, पृ0 70*
45. *पृथ्वी सिंह आजाद रविदास–दर्शन (काशी, संव 2013 वि0), पृ0 184*
46. *सुन्दर विलास, छन्द 54*

47. जायसी ग्रन्थावली (सटीक), पदमावत, बनिजारा खण्ड 79, पृ0 132
48. चित्रावली, पृ0 15
49. महीप सिंह, गुरूनानक, पृ0 132
50. वही, पृ0 64
51. कबीर बीजक, साखी–349
52. दादू दयाल की बानी, भाग–1, 13/37
53. हिन्दी संत काव्य संग्रह, पृ0 146
54. पृथ्वी सिंह आजाद, रविदास–दर्शन, पृ0 26
55. वही, पृ0 26
56. धनी धरमदास जी की शब्दावली, पृ0 73
57. चित्रावली, पृ0 11
58. जायसी ग्रन्थालयी, सटीक, पद्मावत, राजा सुआ संवाद खण्ड 92, पृ0 143
59. मलूकदास जी की बानी, पृ0 32
60. कबीर ग्रन्थावली, साखी 22/5
61. वही, 23/8
62. वही, 23/10
63. संतों की बानी, पृ0 111
64. वही, पृ0 111
65. महीप सिंह, गुरूनानक, पृ0 126
66. वही, पृ0 82
67. वही, पृ0 142
68. वही, पृ0 88
69. योगेश गुप्त, संत कवि रैदास, पृ0 85
70. हिन्दी संत काव्य संग्रह, पृ0 151
71. वही, पृ0 152
72. वही, पृ0 180
73. शेख रहीम, प्रेमरस, पृ0 18
74. जायसी ग्रन्थावली (सटीक), पद्मावत, देवपाल दूती खण्ड 587, पृ0 557
75. कबीर ग्रन्थावली, पदावली, 361, पृ0 157
76. वही, माया कौ अंग 13, पृ0 26
77. वही, अष्टपदी रमैणी, पृ0 174
78. जायसी ग्रन्थावली, पद्मावत, नागमती वियोग खण्ड 16, पृ0 136
79. वही, लक्ष्मी समुद्र खण्ड 28, पृ0 163
80. वही, रत्नसेन विदायी खण्ड 17, पृ0 149
81. महीप सिंह, गुरूनानक, पृ0 40
82. नानक वाणी, पृ0 214
83. वही, पृ0 102
84. संतबानी संग्रह, भाग–2, पृ0 37
85. जायसी ग्रन्थावली, पद्मावत, सुवा खण्ड, पृ0 24
86. वही, बादशाह भोग खण्ड 2, पृ0 211
87. जायसी ग्रन्थावली, पृ0 211
88. वही प्रेमखण्ड 5, पृ0 45
89. कबीर ग्रन्थावली, मन कौ अंग, 1 पृ0 21
90. मधुमालती, 22 पृ0 10
91. जायसी ग्रन्थावली, प्रेमखण्ड 6, पृ0 45
92. कबीर ग्रन्थावली, साखी 54/1
93. वही, 54/5
94. वही, 54/7
95. वही, 54/4
96. दादू दयाल की बानी, भाग 1, 32/7
97. वही, 32/4
98. नानक वाणी, पृ0 103
99. कबीर ग्रन्थावली, साखी 12/10
100. वही, 12/6
101. हरिऔध, कबीर वचनावली (काशी, सं0 2015 वि), पृ0 137
102. वही, पृ0 137
103. वही, पृ0 137
104. दादू दयाल की बानी, भाग–1, 29/2
105. मलूकदास की बानी, पृ0 35
106. धनी धरमदास की शब्दावली, पृ0 75
107. महीप सिंह, गुरूनानक, पृ0 76
108. वही, पृ0 96
109. वही, पृ0 60
110. रज्जन दास की सर्वगी, पृ0 583
111. जायसी ग्रन्थावली, पद्मावत नागमती–सुआ खण्ड 84,पृ0 137
112. कबीर ग्रन्थावली, साखी 34/5
113. दादू दयाल की बानी, भाग–1, 19/14
114. सुन्दर विलास, छन्द 134
115. वही छन्द, 123
116. दादू दयाल की बानी, भाग 1, 29/26
117. वही, 29/27
118. महीप सिंह, गुरूनानक, पृ0 90